© 2018 IJSRSET | Volume 4 | Issue 1 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
Themed Section : Engineering and Technology

वैदिक दर्शन

निलेश मिश्र
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद।

उपनिषद्–पूर्व वैदिक साहित्य में प्रमुख दार्शनिक विचारों के बीच खोजे जा सकते हैं। भारतीय परम्परानुसार वेद नित्य और अपौरुषेय है तथा अक्षय ज्ञान के भण्डार हैं। इतिहास (रामायण और महाभारत) और पुराणों से वेदों का उपबृंहण होता है। अर्वाचीन पाश्चात्य मतानुसार जब अर्ध सभ्य और अर्ध बर्बर आर्य बाहर से भारत मे आकर बसे तो उनमें ज्ञान–विज्ञान का विकास नहीं था। प्रकृति का विविध शक्तियों के कमनीय और सुन्दर रूप को देखकर उन्हें आश्चर्य और कौतुक हुआ, तथा विकराल और ध्वंसात्मक रूप को देखकर भय हुआ। प्राकृतिक शक्तियों के रहस्य को न जानने के कारण उन्होंने इनकी देव और देवियों के रूप में कल्पना कर ली और इनकी स्तुति करने लगे। ये स्तुतियाँ ही वैदिक मन्त्रों के रूप में प्रस्फुटित हुई। कालान्तर में यागादि क्रियाओं का विस्तार हुआ। वैदिक आर्य देवताओं की प्रार्थना करने लगे– 'हम तुम्हें यज्ञ में हवि देते हैं, तुम हमें वीर पुत्र–पौत्र अच्छे घोड़े, पुष्ट बैल, दुधारू गायें, प्रभूत धान्य एवं सुख समृद्धि दो, आपदाओं से हमारी रक्षा करो तथा शत्रुओं के साथ युद्ध में हमें विजयी बनाओ। वैदिक सभ्यता के विकास क्रम में इस प्रथम अवस्था को प्राकृतिक तथा मानवीकृत 'बहुदेववाद' की संज्ञा दी गई है। कालान्तर में इस बहुदेववाद का विकास मैक्समूलर के अनुसर 'एकदा एक एव देववाद' (हेनोथीइज्म) में हुआ जिसके अनुसार वैदिक आर्य जब किसी देवता की स्तुति करते थे तो उस समय उस देवता को ही एक मात्र सर्वोच्च देवता मान लेते थे। आगे चलकर यह 'एकदा एक एव देववाद', 'एकदेववाद', या 'एकेश्वरवाद' में परिणत हुआ। फिर इस एकेश्वरवाद के साथ 'सर्वेश्वरवाद' की भी मान्यता हुई। कालान्तर में इसका चरम विकास 'एकतत्त्ववाद' या 'अद्वैतवाद' के रूप में उपनिषद् में प्रतिष्ठित और विकसित हुआ।

अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् तथा उनके अनुयायी कुछ भारतीय विद्वान वैदिक देवतावाद की उत्पत्ति और विकास का पूर्वोक्त क्रम प्रतिपादित करते हैं किन्तु यह क्रम निराधार है तथा देवता–तत्त्व के अज्ञान का सूचक है। संहिता भाग से ब्राह्मण और आरण्यक भाग द्वारा उपनिषद् भाग एक वैदिक दर्शन का जो विकास हुआ है वह निश्चित ही पाश्चात्य विद्वानों द्वारा कल्पित बहुदेववाद

से एकदा एक एव देववाद, एकदेववाद, सर्वेश्वरवाद द्वारा एकतत्त्ववाद के रूप में नहीं हुआ। वैदिक आर्य बाहर से आये, यह विवादास्पद है, किन्तु वैदिक ऋषि अर्धसभ्य न होकर सुसंस्कृत विद्वान तथा प्रातिभाज्ञानसम्पन्न थे, यह निर्विवाद है। इन मन्त्र–द्रष्टा ऋषियों के द्वारा साक्षात्कृत आध्यात्मिक रहस्य मन्त्रों के रूप में प्रकट हुये हैं। संहिता भाग भी आध्यात्मिक अद्वैतवाद से अनुप्राणित है। संहिता से लेकर उपनिषद् तक वैदिक दर्शन का विकास इस केन्द्रीय आध्यात्मिक अद्वैतवाद का ही विकास है जो अपने अन्तर्गत एकेश्वरवाद और सर्वेश्वरवाद को, परात्परत्व और अन्तर्यामित्व को, तथा भेद, अभेद और भेदाभेद को समाहित किये हैं। वेदों में प्राकृतिक मानवीकृत बहुदेववाद की कल्पना कोरी कल्पना है। वैदिक देवता–गण एक ही देवता की विभिन्न शक्तियों के प्रतीक है। देवताओं को 'असुर' अर्थात् प्राणवान्, बलवान, अप्रतिहतसामर्थ्य–सम्पन्न माना गया है और उनके 'असुरत्व' को स्पष्टतया एक ही स्वीकार किया गया है।[1] वेदो में सर्वव्यापी, सर्वात्मक और परात्पर देव–तत्त्व एक ही है तथा विविध देव–गण इसी की शक्तियों के विविध रूप हैं। यह सर्वान्तर्यामी सूत्रात्मा है। यह विश्वनियन्ता है। वेदों के ये वाक्य निश्चय ही बहुदेववाद के पोषक नहीं है।। जब बहुदेववाद के पोषक नहीं है। जब बहुदेववाद एकदेववाद या एकेश्वरवाद में विकसित होता है तो देव–मण्डल के सर्वाधिक शक्तिमान देव को ही 'देव' या 'ईश्वर' के रूप में स्वीकार किया जाता है। किन्तु वेदों में तो ऐसा नहीं हुआ है। पुनश्चय, मैक्समूलर महोदय को 'हेनोथीइज्म' (एकदा एक एव देववाद) शब्द निर्मित करने का कष्ट करने की अपेक्षा यह स्वीकार कर लेना चाहिए था कि विविध देव 'पर देव' को ही विविध प्रतीक हैं, अतः जब किसी देवी की स्तुति की जाती है तो वह स्तुति वस्तुतः 'पर देव' की शक्ति की ही होती है। यह पर तत्त्व सृष्टि में व्यापक भी है और सृष्टि के पार भी है। वैदिक दर्शन में संहिता से लेकर उपनिषद् तक इसी अद्वैतवाद का विकास हुआ है। अपने मत की पुष्टि में हम वेदों के निम्नांकित उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं– 'उस एक सत् का ही विद्वान अनेक रूपों में वर्णन करते हैं।'[2]

'पुरुष ही यह सब कुछ है; भूत, वर्तमान और भविष्य में जो कुछ था, या होगा, वह सब पुरुष ही है।'[3]

'उस एक ही महान् सत् की उपासना ऋग्वेदी 'उक्थ' के रूप में, यजुर्वेदी 'अग्नि' के रूप में और सामवेदी 'महाव्रत' के रूप में किया करते हैं।[4]

'वह प्रकाशमान, अपिरमेय तत्त्व 'अदिति' है। अदिति ही आकाश है, अन्तरिक्ष है, माता है, पिता है, पुत्र है, समस्त देव–मण्डल है, सारा मानवसमुदाय है, जो कुछ उत्पन्न हुआ है और जो भी उत्पन्न होने वाला है वह अदिति ही है।[5]

---

[1] महद् देवानामसुरत्वमेकम्। ऋग्वेद 3–55
[2] एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। वही 1–164–46
[3] पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्। पुरुषसूक्त, ऋग्वेद 10–90, यजुर्वेद
[4] ऐतरेय आरण्यक 3–2–3–12

वेदों में 'सत्' को सत्ता की दृष्टि से 'सत्य' और नैतिक नियमन की दृष्टि से 'ऋत' तथा आनन्द की दृष्टि से 'मधु' या 'मधुमान्' कहा गया है। वेदों के ये वर्णन देखिये– ऋत के कारण जगत् की सुव्यवस्था है। देवगण ऋत के ही स्वरूप है।[6]

सूर्य ऋत का विस्तार करते हैं। नदियाँ ऋत को प्रवाहित करती है।[7]

यह पृथिवी, आकाश, वायुमण्डल, सरितायें, पर्वत, बृहस्पति, और सूर्य सब मधुमय है। यह मधुमान् है, यह रसवान् है।[8]

'विष्णु के उस परम पद को ज्ञानी, जागरूक विद्वान ही जानते है।[9]

'सृष्टि के आदिकाल में न सत् था न असत् न वायु था न आकाश,..... न मृत्यु थी न अमरता, न रात थी न दिन उस समय केवल वही एक था जो वायुरहित स्थिति में भी अपनी शक्ति से साँस ले रहा था; उसके अतिरिक्त कुछ नहीं था।[10]

'उसम अकाम, धीर, अमृत, स्वयंभू, रसतृप्त, अन्यून, अजर आत्मतत्त्व के अनुभव से ही मृत्यु–भय पर विजय प्राप्त होती है।[11]

'उसके साक्षात् ज्ञान से ही मृत्यु के पार जाया जा सकता है, मृत्यु और संसार के पार जाने का अन्य कोई मार्ग नहीं है।[12]

'इस 'उच्छिष्ट' (प्रपञ्च–निषेध क बाद अवशिष्ट सत्) पर नामरूप आश्रित है, इसी पर सारा लोक आश्रित है।[13]

'इस पुरुष का एक पाद (अंश) यह सारा चराचर विश्व है; इसके तीन पाद इस विश्व के पार अमृत में स्थित है।[14]

---

[5] ऋग्वेद 1–89–10
[6] वही, 9–108–8
[7] ऋग्वेद 1–105–15
[8] वही 6–47–1
[9] तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम्। वही 1–22–21
[10] ऋग्वेद, नासदीयसूक्त 10–129
[11] अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्।। अथर्ववेद 10–8–44
[12] तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। यजुर्वेद रुद्रीय।
[13] उच्छिष्टे नामरूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः। अथर्ववेद 11–9–1
[14] पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि। ऋग्वेद 10–90–3, पुरुषसूक्त, यजूर्वेद।